भारत स्थिरता के साथ वृद्धि की सम्भावनाएं*

या. वे. रेड्डी

भारतीय आर्थिक अध्ययनों के लिए वासेडा यूनिवर्सिटी इन्स्टिट्यूट द्वारा आयोजित ''वर्तमान भारत पर संगोष्ठी'' में आमंत्रित किये जाने पर मैं सम्मानित अनुभव कर रहा हूँ। मैं प्रो. साकाकिबारा, जो विश्वभर में प्रख्यात आर्थिक राजनेता हैं, द्वारा मुझे यहाँ आमंत्रित किये जाने के लिए उनका आभारी हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे विश्वभर में सम्मानित गवर्नर फुकुई के साथ मंच पर भागीदार होने का अवसर मिला है।

भारत और जापान की आर्थिक स्थायी सम्पदाओं में एक दूसरे के प्रति मजबूत अनुपूरकताएं हैं। उदाहरण के लिए, ये पूंजी अधिशेष, जनसंख्यागत प्रौद्योगिकीगत विशेषज्ञता तथा कच्चे माल की सम्पदाओं से संबंधित हैं। हम जानते हैं कि भारत-जापान व्यापार और आर्थिक सम्बंध एक नये पथ पर बढ़ रहे हैं जिनमें एशिया में उठायी गयी अनेक पहलें शामिल हैं।

भारत में अनेक बुनियादी संरचना सम्बंधी परियोजनाओं पर जापान के साथ संयुक्त रूप से विचार किया जा रहा है। मुझे आशा है कि संगोष्ठी के दौरान, दोनों देशों के पारस्परिक हित से संबंधित महत्त्वपूर्ण मुद्दों और क्षेत्रों को रेखांकित किया जायेगा।

संगोष्ठी के विषय तथा मेरे अपने कार्यक्षेत्र को देखते हुए मैंने भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में ''स्थिरता के साथ वृद्धि की सम्भावनाएं'' का शीर्षक चुना है।

1. स्थिरता के साथ वृद्धि के पच्चीस वर्ष (1980-2005)

भारतीय अर्थव्यवस्था 1980-81 से (भारत का राजकोषीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है) लेकर इन पच्चीस वर्षों की अवधि के दौरान औसतन 6.0 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है।

* डॉ. या.वे.रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा इंडियन इकॉनोमिक स्टडीज, वासेडा यूनिवर्सिटी, निकेई, शिनबन में 28 मई 2007 को आयोजित ''वर्तमान भारत पर संगोष्ठी'' में दिया गया व्याख्यान।

यहाँ नोट करने की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस अवधि के दौरान न केवल भारत की अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर उच्च रही है, बल्कि काफी सीमा तक स्थिरता भी बनी रही है। भारत की वृद्धि दर का एक उल्लेखनीय अनुभव इसकी वैश्विक और घरेलू दोनों प्रकार के आघातों को झेलने की शक्ति का रहा है।

इस तथ्य के बावजूद कि हमने अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संकट, प्रतिरक्षा संबंधी तनाव, अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों, कम वर्षा आदि जैसे अनेक बाह्य आघातों को झेला है, भारत की वृद्धि दर में संगति के इस स्तर को बने रहने को स्पष्ट करने के लिए अनेक परिकल्पनाएं दी गयी हैं।

घरेलू खपत की प्रधानता ने जिसने औसतन समग्र माँग का लगभग दो-तिहाई योगदान किया, सकल देशी उत्पाद की उद्वेगशीलता को घटाने में सहायता की है। कृषि की तुलना में सेवा क्षेत्र प्रधान है और कम उद्वेगशील है, और यह विशेषता भी भारत की वृद्धि प्रक्रिया में स्थिरता प्रदान करती रही है। सेवा क्षेत्र की वृद्धि का बड़ा भाग वर्तमान में सेवाओं और विनिर्माण उद्योग के बीच सहक्रिया प्रदान कर रहा है जो इन दोनों क्षेत्रों में कुल कारक उत्पादकता और प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ा रही है। तथापि मध्यावधि में व्यापक जनता को विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, लाभान्वित करने के लिए निरंतर वृद्धि सुनिश्चित करने हेतु कृषि क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र बना हुआ है।

2. वृद्धि और विश्वास में हाल ही में आयी द्रुतगति

25 वर्षों तक लगभग 6 प्रतिशत की गति से बढ़ने के बाद भारत ने उच्च वृद्धि वाले चरण में प्रवेश किया जिसमें 2003-04 से लेकर गत चार वर्षों के दौरान औसतन 8.6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर रही है। इस अवधि के दौरान औसत मुद्रास्फीति की दर लगभग 5 प्रतिशत तक सीमित रही है। जो पूर्ववर्ती साढ़े तीन दशकों के दौरान रही लगभग 8 प्रतिशत की दर से काफी निम्न रही है। गत दो वर्षों में यह वृद्धि दर औसतन 9.1 प्रतिशत की रही। साथ ही सकल देशी उत्पाद 2006-07 के दौरान 9.2 प्रतिशत की दर से बढ़ा है। वर्ष 2007-08 के लिए रिज़र्व बैंक सदेउ में वृद्धि की दर लगभग 8.5 प्रतिशत रहने का अनुमान लगता है।

वर्ष 2006-07 के दौरान, औसत थोकमूल्य मुद्रास्फीति लगभग 5.4 प्रतिशत रही, हालांकि वित्त वर्ष 2006-07 के अंतिम माहों में मुद्रास्फीति की दर 6 प्रतिशत से भी ऊपर रही। तब से लेकर कुछ संतुलन आया है, और 12 मई 2007 को समाप्त सप्ताह के लिए मुख्य मुद्रास्फीति की दर 5.27 प्रतिशत है। वर्ष 2007-08 के लिए रिज़र्व बैंक की नीति का प्रयास मुद्रास्फीति को 5.0 प्रतिशत के आस-पास बांधे रखने का होगा। वैश्विक अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक अधिमानताओं के साथ भारत के बढ़ते हुए समेकन को मान्यता देते हुए, इस प्रयास को और आगे बढ़ाना है जिसमें मुद्रास्फीति संबंधी नीतियों और प्रत्याशाओं को इस प्रकार बनाना है कि मुद्रास्फीति की दर 4.0-4.5 प्रतिशत के दायरे में रहे। यह उद्देश्य स्वतः स्फुरित तेज वृद्धि दर को मध्यावधि में बनाये रखने में सहायक होगा।

मुद्रास्फीति और वृद्धि की सम्भावनाओं के संबंध में एक स्वागत-योग्य गतिविधि यह रही है कि सरकार (केंद्र और राज्यों दोनों) की राजकोषीय स्थिति राजकोषीय घाटे के संकेतकों में लक्ष्यबद्ध कटौती करने की दृष्टि से समेकन की ओर बढ़ रही है। अनेक राज्य सरकारों की राजकोषीय स्थिति में सुधार विशेष प्रभावपूर्ण है।

हाल की एक उल्लेखनीय गतिविधि यह है कि भारत भी विनिर्माण और विनिर्मित उत्पादों का एक प्रमुख केंद्र बिंदु बनता जा रहा है और इनमें भारतीय उद्योगों की

वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मता के कुछ उदाहरण देना उपयुक्त होगा। भारत में इस्पात का उत्पाद अब विश्व में निम्नतम लागत वाला उत्पादन है। इसी प्रकार फार्मास्यूटिकल (औषध उत्पाद) तथा बायोटेक फर्में भी अंतरराष्ट्रीय रूप से अत्यधिक प्रतिस्पर्धी हैं। हाल के वर्षों में, हमने भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी को बहुर्राष्ट्रीय फर्मों के रूप में बढ़ते देखा है, देशी उद्यमी अन्य देशों में भी अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज कराना शुरू कर रहे हैं, जिसमें सीमा पार (विदेशों) में अधिग्रहण, विदेशों में ठेकों का लेना, तथा अन्य कम लागत वाले स्थलों (देशों) में संस्थागत वृद्धि आदि शामिल हैं भारतीय विनिर्माण वाली फर्में विदेशी स्थलों की बेहतर स्थितिगत प्रतिस्पर्धी लाभ को बढ़ाने के लिए विदेशों में फर्मों का अधिग्रहण कर रही हैं, तथा प्रचुरता-जन्य लागत में मितव्ययिता तथा उस डोमेन का ज्ञान अर्जित करने के लिए अधिगृहीत कंपनियों और पैतृक कंपनी के बीच समान सहक्रियाओं का उपयोग करके अपनी प्रतिस्पर्धा को बढ़ा रही हैं।

रिज़र्व बैंक के लिए यह संतोष का विषय है कि वित्तीय क्षेत्र ने बेहतर शक्ति दक्षता और स्थिरता प्राप्त कर ली है। यह बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा अंतरराष्ट्रीय मानदंडों के अनुरूप विनियामक उपायों, सकारात्मक नीतिगत परिवेश तथा बैंकों सहित बाजार के खिलाड़ियों के बीच अभिप्रेरणा का मिला-जुला प्रभाव है। मुद्रा बाजार को क्रमिक रूप से विकसित किया गया है। सरकारी प्रतिभूति बाजार लिखतों, प्रक्रियाओं और सहभागियों की दृष्टि से गहन, तरल, ऊर्जस्वित और सुविकसित है। भारत की विदेशी मुद्रा विनिमय दर, विशेषकर गत पिछले कुछ वर्षों में नमनीय रही है, तथा विदेशी मुद्रा बाजार में कुल कारोबार काफी मात्रा में बढ़ा है। स्टॉक बाजार विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए खोल दिया गया है तथा बाजार पूंजीकरण, कुल कारोबार और प्रणाली तथा प्रक्रियाओं की दृष्टि से प्रमुख अंतरराष्ट्रीय इक्विटी बाजारों से तुलनीय है।

यह सच है कि भारत में कंपनी ऋण बाजार प्रमुख वित्तीय केंद्रों की तुलना में कुछ कम विकसित है, परंतु मध्यावधि में यह बुनियादी संरचना, आवास और कंपनी और महानगरीय आवश्यकताओं के लिए संसाधनों को जुटाने में भारी सक्षमता रखता है। संस्थागत निधियों की आपूर्ति बीमा और पेंशन क्षेत्रों में बढ़ते हुए रूपांतरण के साथ बढ़ते जाने की सम्भावना है। सुविकसित सरकारी प्रतिभूति बाजार, सुदृढ़ व्यापक संरचना तथा वित्तीय बुनियादी संरचना, बाजार सहभागियों की दक्षताएं भारत में ऋण बाजारों को बड़ी तेजी से और स्वस्थ वृद्धि करने में समर्थ बनायेंगी।

जहाँ तक भारत के बाह्य क्षेत्र का संबंध है, यह कुछ वर्षों तक मामूली-से अधिशेष की स्थिति में रहने के बाद चालू खाता घाटा के बहुत ही संतुलित (कम) स्तरों पर बने रहने के साथ-साथ ऊर्जस्वित हो गया है। गत चार वर्षों के दौरान निर्यात औसतन 24 प्रतिशत की दर से बढ़ रहे हैं। सेवाओं के निर्यात में निरंतर वृद्धि तथा आगम विप्रेषण अदृश्य खाते में अधिशेष को ऊर्जस्विता प्रदान करना जारी रखे हुए हैं। पूंजी खाते में उल्लेखनीय शक्ति आयी है। 200 बिलियन अमरीकी डॉलर से अधिक के विदेशी मुद्रा भंडार के साथ यह भंडार वर्तमान में दिसंबर 2006 के अंत के 142.7 बिलियन अमरीकी डॉलर के कुल बाह्य ऋण से भी अधिक हो गया है। इस प्रकार यह अर्थव्यवस्था की बाह्य क्षेत्र की सुधरी हुई वहनीयता को दर्शाता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर हमारे देश में जो वर्तमान चिंतन है उसे सर्वोत्तम रूप में हमारे प्रधान मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के शब्दों में संक्षिप्त में प्रस्तुत किया जा सकता है :

''हमें बड़े स्तर पर और साहसिक रूप में सोचना चाहिए। हमें क्रमिक वृद्धि के प्रतिमान से हटकर भारी वृद्धि के प्रतिमान की ओर तथा अभी तक अज्ञात रहे क्षेत्रों में वृद्धि की ओर बढ़ना चाहिए।''

3.आर्थिक सम्भावनाओं का दोहन

हमारे प्रधान मंत्री के वक्तव्य में व्यक्त की गयी आशावाद के लिए ठोस कारण हैं और इस समय सर्वप्रमुख नीतिगत चुनौती यह है कि मुद्रास्फीतिकारी दबावों को नियंत्रित रखते हुए उच्चतर प्रगति पथ पर संचरण को निरंतर आधार पर बने रहने का प्रबंधन किया जाए। इस संदर्भ में मैं यहाँ कुछ प्रासंगिक मुद्दों को व्यक्त करना चाहूंगा।

(i) बचत-निवेश : अनुकूल प्रवृत्ति

हाल के वर्षों में आर्थिक गतिविधियों को सुदृढ़ बनाने के लिए घरेलू निवेश की दरों में सतत वृद्धि से समर्थन मिला है, यह निवेश की दर जो 2001-02 में सदेउ की 22.9 प्रतिशत थी, 2005-06 में बढ़कर 33.8 प्रतिशत हो गयी। इसके साथ ही पूंजी का दक्षतापूर्ण प्रयोग भी किया गया। इसी अवधि में घरेलू बचत की दरों में भी सुधार हुआ जो 23.5 प्रतिशत की दर से बढ़कर इसी अवधि के दौरान 32.4 प्रतिशत हो गयी। यह सार्वजनिक क्षेत्र और निजी कंपनी की बचतों दोनों में हुए सुधारों के कारण सम्भव हो सका। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत में प्रति व्यक्ति आय तेजी से बढ़ रही है तथा अधिकाधिक समावेशनपरक वृद्धि को प्राप्त करने के लिए वित्तीय गहनता को लाने के प्रयास किये जा रहे हैं, भारत में बचत की दरें मध्यावधि से लेकर दीर्घावधि में और भी बढ़ सकती हैं। बचत दरों के स्तर को अर्थव्यवस्था की, विशेषकर सामाजिक और भौतिक बुनियादी संरचना के विकास के लिए निवेशगत आवश्यकताओं का वित्तपोषण करने में सहायता करनी चाहिए। जैसा कि वित्तीय क्षेत्र के विकास के संबंध में पहले की कहा जा चुका है, विशेषकर कंपनी ऋण बाजार के संबंध में, हमें भारत में बुनियादी संरचना के लिए दीर्घावधि निधियों की बढ़ती हुई मांग को बचतों, विशेषकर दीर्घावधि संविदागत बचतों से, जो बीमा कंपनियों तथा पेंशन निधियों में होनेवाली हैं, पूरा करना चाहिए उनकी वृद्धि के अनुरूप उनके दक्ष वित्तीय मध्यस्थन की अपेक्षा करनी चाहिए।

(ii) बढ़ती हुई उत्पादकता के साक्ष्य

भारत के लिए एक अन्य सकारात्मक कारक है - उत्पादकता की प्रवृत्ति। भारत से संबंधित कुछ हाल के अध्ययन यह संकेत करते हैं कि हाल के वर्षों में कुल उपादान उत्पादकता (टीएफपी) वृद्धि में बढ़त हुई है। उदाहरण के लिए रोड्रिक तथा सुब्रमणियन ने 2004 के एक आइएमएफ वर्किंग पेपर (अध्ययन लेख) में यह निर्दिष्ट किया है, कि ऐसा लगता है कि भारत ने अपेक्षाकृत मामूली से सुधारों से भारी मात्रा में उत्पादकता वृद्धि प्राप्त कर ली हैं। अभी के एक और ताजा लेख में बेरी बोसबर्थ, सुसान कौलिंस और अरविन्द विरमानी (2006) ने इस प्रवृत्ति की पुष्टि की है। उन्होंने पाया कि प्रति कामगार वार्षिक उत्पादन 1960-1980 के दौरान मात्र 1.3 प्रतिशत बढ़ा, जबकि सदेउ की वृद्धि दर भी मात्र 3.4 प्रतिशत पर निम्न ही थी। टीएफपी वृद्धि भी शून्य प्रतिशत से कुछ ही ऊपर थी। उनकी गणना के अनुसार यह अध्ययन यह संकेत करता है कि उत्पादन में वृद्धि पूर्णतः निविष्टियों में वृद्धि से प्रेरित थी। इसके विपरीत, प्रति कामगार उत्पादन में वृद्धि 1980-2004 के दौरान लगभग तीन गुनी होकर 3.8 प्रतिशत हो गयी, जबकि टीएफपी में 10 गुनी वृद्धि होकर वह 2 प्रतिशत तक पहुँच गयी।

श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि की इस बढ़त का प्रमाण अन्य अध्ययनों में भी उपलब्ध है (इकॉनामिक इन्टैलिजेन्स यूनिट 2007)। टाटा सर्विसेज द्वारा किये गये एक अध्ययन (2003) ने यह पाया कि अखिल भारतीय विनिर्माण क्षेत्र के लिए श्रमिक उत्पादकता (श्रमिक की

प्रति यूनिट का उत्पादन) सुधार-पूर्व अवधि की तुलना में सुधारोत्तर अवधि में उल्लेखनीय रूप से बढ़ा है।

(iii) भौतिक बुनियादी संरचना : आशावाद के लिए आधार

यह मानी हुई बात है कि हाल के वर्षों में भारत में आर्थिक वृद्धि में एक महत्त्वूपर्ण बाधा बुनियादी संरचना की कमी रही है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में यह अनुमान लगाया गया है कि सदेउ की वृद्धि दर को 7 प्रतिशत से 9 प्रतिशत तक बढ़ाने के लिए इस योजना अवधि के दौरान बुनियादी संरचना में निवेश के चालू स्तर, जो सदेउ का 4.6 प्रतिशत है, को बढ़ाकर 8 प्रतिशत तक करना होगा। पर्याप्त और गुणवत्तापूर्ण (बढ़िया) बुनियादी संरचना उपलब्ध कराने का मुद्दा सभी स्तरों पर नीति-निर्माताओं का ध्यान पहले से ही आकर्षित कर रहा है। बुनियादी संरचना समिति, जिसके अध्यक्ष माननीय प्रधान मंत्री स्वयं हैं, ने यह अनुमान लगाया है कि भारत में 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान लगभग 345 बिलियन अमरीकी डॉलर की अर्थात प्रत्येक वर्ष सदेउ के लगभग 8 प्रतिशत के निवेश की जरूरत होगी।

सरकारी नीति में किये गये प्रावधान, विशेषकर विनियामक परिवेश में भौतिक बुनियादी संरचना से संबंधित समस्याओं पर काबू पाने संबंधी आशावाद के अनेक सकारात्मक आधार हैं। पहला, जहाँ भारत विदेशी पूंजी के लिए एक आकर्षक गन्तव्य बन गया है, वहीं देशी बचतों का भी पर्याप्त निर्माण हुआ है। गतावधि की तरह, निवेश का 90 से 95 प्रतिशत से अधिक भाग का निधीयन देशी बचतों से किया जा सकता है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है बीमा, पेंशन, ऋण बाजार, राजकोषीय स्थिति आदि की हाल की गतिविधियों ने बुनियादी संरचना के विकास के लिए दक्ष और पर्याप्त देशी वित्त पोषण के विकल्पों को सम्भावना को और भी बढ़ा दिया है। दूसरे, भारत में बुनियादी संरचनागत निवेश मूलतः मांग प्रेरित है और इसलिए उनकी निर्माणावधि भी संक्षित होगी। तीसरे, देश में देशी उद्यमिता - निर्माण - प्रौद्योगिकी तथा परियोजनाओं को दक्षतापूर्वक और शीघ्रपूर्वक निष्पादित करने की निपुणता जन्य क्षमताएं पर्याप्त रूप से विद्यमान हैं । चौथे, भारत में सेवाक्षेत्र की वृद्धि और गुणवत्ता ने भौतिक बुनियादी संरचना में निवेशों की बढ़ी हुई उत्पादकता की सम्भावनाओं को बढ़ा दिया है। अंतिम, सार्वजनिक-निजी तथा देशी और विदेशी सहभागिता का गतिशील मिश्रण एयरपोर्ट जैसे अनेक क्षेत्रों में पहले से ही इसका प्रमाण उपलब्ध करा रहा है।

(iv) राजकोषीय संतुलन में सुधार

यह सच है कि केंद्र और राज्यों के लोक ऋण की सकल मात्रा सकल देशी उत्पाद के प्रतिशत के रूप में उच्च है जो वर्तमान में लगभग 75 प्रतिशत है। तथापि, हाल के अनुकूल चक्रीय कारकों को समायोजित किये जाने के बावजूद इनमें सुधार आने के संकेत हैं। केंद्र सरकार के राजकोषीय प्रबंधन का लक्ष्य मोटे तौर पर सकल राजकोषीय घाटे को सकल देशी उत्पाद के 3 प्रतिशत तक लाने के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में बढ़ने का तथा 2008-09 तक राजस्व घाटे को समाप्त करने का रहा है। यह ध्यान में रखा जा सकता है कि जीएफडी / जीडीपी तथा आरडी/जीडीपी के अनुपात को 2007-08 के बजट में घटाकर क्रमशः 3.3 प्रतिशत तथा 1.5 प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य रखा गया है। हाल के वर्षों में राज्य सरकारों के वित्तों में भी उल्लेखनीय सुधार आये हैं। सभी राज्यों का जीएफडी 1999-2000 के सदेउ के 4.7 प्रतिशत से घटकर 2006-07 में सकल देशी उत्पाद का 2.7 प्रतिशत रह गया, जबकि राजस्व घाटा सदेउ के 2.7 प्रतिशत से गिरकर 0.1 प्रतिशत पर

आ गया। अधिकांश राज्यों ने राजकोषीय उत्तरदायित्व विधान का अधिनियम भी बना लिया है।

यहाँ, यह भी ध्यान में रखना उपयोगी होगा कि भारत में लोक ऋण के प्रबंधन की अनेक अद्वितीय विशेषताएं हैं जो व्यापक अर्थव्यवस्था को समग्र स्थिरता प्रदान करती हैं। पहली, राज्यों पर बाह्य ऋण का प्रत्यक्ष कोई भार नहीं है। दूसरे, लगभग संपूर्ण लोक ऋण स्थानीय मुद्रा में है, और अधिकांशतः प्रायः पूरा ही निवासियों द्वारा धारित है। तीसरे, केंद्र और राज्य सरकारों, दोनों के लोक ऋण का प्रबंधन, सक्रिय रूप से तथा विवेकसम्मत रूप से रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाता है जो यह सुनिश्चित करता है कि वित्तीय बाजारों में बिना किसी अनावश्यक उद्वेगशीलता के सुभीता बनी रहे। चौथे, सरकारी प्रतिभूति बाजार कुल कारोबार, गहनता तथा सहभागिता की दृष्टियों से हाल के वर्षों में उल्लेखनीय रूप से विकसित हुआ है तथा आगे और उल्लेखनीय सुधार प्रक्रिया में हैं। पांचवें, संविदागत बचतें घाटों के वित्तपोषण में विपणन-योग्य ऋण की अनुपूर्ति करती हैं। अंत में, ऋण के प्राथमिक निर्गमों का प्रत्यक्ष मौद्रिक वित्तपोषण अप्रैल 2006 से बंद कर दिया गया है। अतः जहाँ तक स्थिरता का प्रश्न है सकल देशी उत्पाद की तुलना में लोक ऋण का उच्च स्टॉक अभी तक चिंता का विषय नहीं रहा है, जबकि यह स्वीकार किया गया है कि दीर्घावधिक निवर्हनीयता इनमें क्रमिक रूप से कटौती करते हुए इन्हें विवेक-सम्मत स्तरों तक लाने की मांग करती है।

(v) जनसंख्यागत लाभांश तथा चुनौती

भारत विश्व का सर्वाधिक युवा शक्ति वाला तथा तेजी से बढ़ती हुई कार्य-मूलक उम्र की जनसंख्या वाला देश है। वर्तमान में भारतीय जनसंख्या का लगभग 36 प्रतिशत भाग 15 वर्ष से कम उम्र का है। यह आशा की गयी है कि भारत में जनसंख्या की औसत उम्र में और गिरावट आयेगी, हालांकि 25 वर्षों के बाद इसमें वृद्धि होगी। गत दो दशकों में औद्योगिक देशों में जनसंख्या की मध्यमान आयु 30 वर्षों से बढ़कर 40 वर्ष हो गयी है, वहीं भारत में मध्यमान आयु 1980 की 20 वर्ष से बढ़कर 2005 में 24 हो गयी है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा किये गये पूर्वानुमानों के अनुसार भारत में मध्यमान आयु 2025 तक ही जाकर 30 को पार करेगी और 2040 तक 35 वर्ष बनी रहेगी। 2020 में औसत भारतीय केवल 29 वर्ष का होगा, जबकि इसकी तुलना में चीन में तथा अमरीका में व्यक्ति औसतन 37 वर्ष का पश्चिमी यूरोप में 45 वर्ष का और जापान में 48 वर्ष का होगा।

हालांकि जनसंख्यागत विशेषताओं में अंतः क्षेत्रीय रूप से कुछ भिन्नताएं हो सकती हैं, मुक्त रूप से श्रमिकों की गतिशीलता (आवागमन) को देखते हुए समग्र रूप से देश के लिए अपेक्षाकृत दीर्घावधिक अनुकूल जनसंख्यागत इस रूपान्तरण का समग्र आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव होगा।

भारी संख्या में हम इंजीनियर, प्रौद्योगिकीविद, डाक्टर आदि तैयार करके मानव संसाधनों का विकास करने पर जोर दे रहे हैं, उसे देखते हुए यह आशा की जाती है कि भारत की युवा और भारी जनसंख्या की उच्च श्रमिक उत्पादकता होगी और साथ ही उसकी सामाजिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य से जुड़े खर्चों की भी बहुत कम जरूरत होगी। इससे यह आशा की जाती है कि यह न केवल भारत की वृद्धि प्रक्रिया को सशक्त बनायेगी, बल्कि अन्य औद्योगिक देशों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को भी पूरा करेगी।

निस्सन्देह, यह जनसंस्थागत प्रक्रिया एक भारी और वृद्धिशील श्रमिक शक्ति का सृजन करेगी। तथापि भारत के इस अपेक्षाकृत बड़े और युवा कार्य-बल द्वारा उपलब्ध

करायी जाने वाली अवसर की खिड़की को वास्तविकता ग्रहण करने में एक अनुकूल सामाजिक नीतिगत परिवेश की जरूरत होगी। इस संदर्भ में,यह मान लिया गया है कि शिक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से एक अच्छा गुणवत्तापूर्ण सामाजिक संरचना का निर्माण करने के लिए अपने प्रयासों की गति को तेज करना होगा जो संभावित 'युवा-शक्ति' को आसानी से और उत्पादक रूप में खपाने में सहायता कर सकें। सरकारी नीति उत्तरोत्तर रूप में इस आवश्यकता से परिचित है कि शिक्षा और स्वास्थ्य को उच्च प्राथमिकता दी जानी है और साथ ही रोजगार-सृजन को भी, जो कि वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता के अनुरूप हो। दूसरे शब्दों में जनसंख्यागत लाभांश के लाभ लेने के लिए सरकारी नीति को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी।

(vi) गरीबी और रोजगार : भारी चुनौती

किसी भी देश की वृद्धि की गाथा तब तक अधूरी है जब तक कि गरीबी और रोजगार की स्थिति पर इसके प्रभाव का आकलन न किया जाए। भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या 1993-94 के लगभग 36 प्रतिशत से गिरकर 2004-05 में 22.0 प्रतिशत रह गयी है। 1993-94 की तुलना में 2004-05 की अवधि के दौरान गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के प्रतिशत में यह औसत गिरावट 0.74 प्रतिशत वार्षिक है। यूएनडीपी मानव विकास रिपोर्ट, 2006 के अनुसार मानव विकास सूचकांक की दृष्टि से भारत को 126 वें स्थान पर रखा गया है। सरकारी नीति के लिए सबसे बड़ा चुनौतीपूर्ण कार्य यह सुनिश्चित करना है कि लाखों गरीब लोगों के लिए पर्याप्त रोजगार खोजा जाए और खासकर युवा लोगों की बढ़ती हुई संख्या के लिए।

एक लोकप्रिय पत्रिका में हाल ही में प्रकाशित जॉब सर्वेक्षण के व्यापक परिणाम के अनुसार यह वर्तमान उच्च वृद्धि का चरण बेरोजगारों की वृद्धि का चरण नहीं है, बल्कि अब 1990 के बाद के दशक की तुलना में लगभग सभी क्षेत्रों में जॉब निर्मित हो रहे हैं। इस रिपोर्ट तथा अन्य दस्तावेज़ी साक्ष्यों के अनुसार सदेउ की वृद्धि दर में हाल ही में आयी तीव्र वृद्धि के लाभ बड़े-बड़े शहरों तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि अन्य शहरों और कस्बों के लोग भी इनसे लाभान्वित हो रहे हैं।

जहां औपचारिक क्षेत्र में अप्रत्यक्ष बेरोजगारी तथा आंशिक बेरोजगारों की संख्या में कमी आने के कुछ साक्ष्य हैं, वहीं भारी कार्य के अवसरों, उत्पादक रोजगार प्रदान करने को भारत में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है।

5. वित्तीय क्षेत्र का दोहन

(i) सुदृढ़ और ऊर्जस्वित बैंकिंग क्षेत्र : भावी पथ

जहां वित्तीय क्षेत्र के सुधार के व्यापक उद्देश्य दक्षता और उत्पादकता को बढ़ाने के थे, वहीं सुधारों की प्रक्रिया एक चरणबद्ध तथा यथोचित क्रम से शुरू की गयी ताकि उसका एक दूसरे को सशक्त बनाने वाला प्रभाव हो। इसमें दृष्टिकोण परामर्शी प्रक्रिया के माध्यम से सर्वोत्तम अंतरराष्ट्रीय संव्यवहारों को अपनाकर वित्तीय क्षेत्र को निरंतर उन्नत करने का रहा है।

गत 16 वर्षों की अवधि के दौरान, भारत में बैंकिंग प्रणाली में भारी परिवर्तन हुए हैं। नये-नये बैंक खुले, नयी-नयी लिखतें आयीं, नयी-नयी खिड़कियां खुलीं और नये-नये अवसर आये और इन सभी के साथ-साथ नयी-नयी चुनौतियां भी आयीं। जहां अपविनियमन में बैंकों के लिए अपनी आयों को बढ़ाने के लिए नये द्वार खोल दिये हैं, वहीं इसने महत्तर प्रतिस्पर्धा तथा महत्तर जोखिमों को भी आमंत्रण दिया है। जबसे मात्र आर्थिक मध्यस्थक

होने का बैंकों का परंपरागत चेहरा बदला है, तभी से जोखिम प्रबंधन एक निर्धारक कारक हो गया हैं। बाजारोन्मुख परिवेश में अपने वाणिज्यिक निर्णयों का उपयोग करते हुए बैंकों को अपने संसाधनों के आबंटन में पर्याप्त परिचालनगत आज़ादी दी गयी है। पूंजी-पर्याप्तता अनुपात वाणिज्यिक बैंकों के लिए मार्च 2006 के अंत से बढ़ाकर 12.4 प्रतिशत कर दिया गया है जो अंतरराष्ट्रीय मानदंड से काफी ऊपर है। वाणिज्यिक बैंकों का निवल लाभ 2004-05 और 2005-06 के दौरान उनकी कुल आस्तियों का 0.9 प्रतिशत था जो कि 1995-96 के 0.16 प्रतिशत की तुलना में उच्च रहा। निवल गैर-निष्पादक आस्तियां 2004-05 के 2.0 प्रतिशत की तुलना में 2005-06 के दौरान उनके निवल अग्रिमों का 1.3 प्रतिशत रह गयीं। वर्ष 2006-07 के लिए अधिकांश बैंकों के लिए उपलब्ध प्राथमिक वित्तीय परिणामों के अनुसार वित्तीय सुदृढ़ता में और सुधार हुआ है।

हमारा बैंकिंग क्षेत्र का सुधार विश्व में अद्वितीय रहा है क्योंकि इसमें प्रतिस्पर्धा, विनियमन तथा स्वामित्व का ऐसा मिला-जुला व्यापक नवीकरण है जो ग़ैर-व्यवधानकारी और मितव्ययता के साथ किया गया है। वस्तुतः हमारे बैंकिंग सुधार व्यापक समस्याओं के प्रबंधन में सार्वजनिक क्षेत्र की गतिशीलता तथा देशी और विदेशी निजी क्षेत्र को प्रतिस्पर्धी बनने तथा विस्तार करने के लिए समर्थ बनाने में सार्वजनिक नीति की प्रयोजनमूलकता का एक अच्छा उदाहरण है।

सुदृढ़ आधारों तथा बुनियादी संस्थागत ढांचे को देखते हुए, समग्र वित्तीय क्षेत्र के लिए आगे का रास्ता अपविनियमन और उदारीकरण की गति को और तेज करने का है जो वास्तविक और राजकोषीय क्षेत्रों में सुधारों की प्रगति के अनुरूप हो। रिज़र्व बैंक और वाणिज्यिक बैंक बासल-II के अनुपालन की तैयारी करते रहे हैं। व्यवहार में वर्तमान कानूनी ढांचे के अंतर्गत प्राथमिकताओं को यथोचित रूप से निर्धारित करना होगा जो विकसित होती हुई देशी और बाह्य गतिविधियों के अनुसार बैंकिंग क्षेत्र में अपेक्षित सुधारों को लागू करना सुनिश्चित कर सकें।

(ii) वित्तीय बाजार : दक्ष और विकसनशील

1990 के बाद के वर्षों से शुरू किये गये वित्तीय क्षेत्र के सुधारों से वित्तीय बाजारों के विकास को ठोस प्रेरणा मिली। वित्तीय बाजारों में सुधारों को सावधानीपूर्वक क्रमबद्ध रूप से लागू किया गया जिनसे यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे वास्तविक क्षेत्र में किये गये सुधारों के अनुरूप हैं। प्रभावी मौद्रिक नीति के निर्माण तथा मौद्रिक संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्रों के लिए परिवेश के विकास के लिए भी ये सुधार महत्वपूर्ण थे। सुधारों के अन्य क्षेत्रों को भारी वित्तीय बाजारों के विकास के लिए भी क्रमबद्ध दृष्टिकोण अपनाया गया। इसने भारत के लिए बेहतर कार्य किया है क्योंकि इसने देशी और वैश्विक गतिविधियों के आधार पर विभिन्न तत्वों को निरंतर रूप से पुनर्संतुलित करते रहने में सहायता की है और इस प्रकार इसने वित्तीय समेकन से जुड़ी लागत को न्यूनतम करते हुए इसके लाभों को अधिकतम करने में सहायता की । इस दृष्टिकोण में वित्तीय उदारीकरण की गति और क्रमिकता को थोड़ा-बहुत बदला गया ताकि विश्वसनीय तरीके से आगे बढ़ते हुए सुविधा भी बनी रहे। उदारीकरण की यह क्रमबद्धता (क्रमिकता) अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में किये जा रहे सुधारों के साथ तालमेल बैठाने में भी समर्थ बनाती है।

इस अवधि में वित्तीय बाजारों की दक्षता में सुधार लाने के लिए योजनाबद्ध रूप में अनेक विनियामक तथा विधायी उपाय किये गये। इनमें शामिल हैं-बाजार की व्यष्टिगत संरचना का विकास, संरचनागत अवरोधों को

हटाना, नये खिलाड़ियों/ लिखतों की शुरूआत/लिखतों का विशाखीकरण, वित्तीय आस्तियों का मुक्त रूप से मूल्य निर्धारण, मात्रागत प्रतिबंधों में ढील देना, बेहतर विनियामक प्रणालियां, नयी प्रौद्योगिकी की शुरूआत, ट्रेड़िंग (लेनदेन) की बुनियादी संरचना में सुधार, समाशोधन और निपटान की प्रणालियां, तथा बेहतर पारदर्शिता। सुधारों के प्रारम्भिक चरणों में विवेक-सम्मत मानदंड लागू किये गये, इनके बाद ब्याज दर अपविनियमन तथा क्रमिक रूप से सांविधिक पूर्व-क्रयों को कम किया गया। इन नीतियों के साथ-साथ संस्थाओं को सुदृढ़ किया गया, बेहतर बाजार संव्यवहारों को प्रोत्साहित किया गया, कर-संरचना को तर्क-सम्मत तथा वैधानिक और लेखांकन ढांचे को समर्थनकारी बनाया गया।

आगे बढ़कर देखें तो जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था उभरती बाजारी अर्थव्यवस्था से एक अधिक परिपक्व अर्थव्यवस्था की सीढ़ी पर चढ़ती जायेगी उसके लिए उचित नीति, सुदृढ़ व्यापक अर्थव्यवस्था और सुदृढ़ तथा ऊर्जस्वित वित्तीय प्रणाली का न्यायोचित रूप में सम्मिश्रण करना आवश्यक होगा। चूंकि वित्तीय बाजारों का विकास एक निरंतर जारी रहने वाली प्रक्रिया है, अतः वित्तीय बाजारों के विभिन्न घटकों को और भी गहन तथा व्यापक बनाने की पहलों को निरंतर रूप से जारी रखना होगा। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था उच्चतर वृद्धि पर पर बढ़ती है जिसमें शेष विश्व के साथ महत्तर खुलापन तथा वित्तीय समेकन भी बढ़ता जायेगा तो अपने सभी पहलुओं के साथ, वित्तीय क्षेत्र के विकास को और भी तेज करना होगा और उनके साथ ही साथ विनियामक आधुनिकीकरण और सुदृढ़ीकरण को जारी रखने के लिए तदनुरूप उपाय भी करने होंगे। चूंकि आर्थिक वृद्धि और वित्तीय स्थिरता के संदर्भ में, मूल्य स्थिरता को बनाये रखना समग्र मूल उद्देश्य बना रहेगा अतः प्रयास ये होंगे कि वास्तविक और राजकोषीय क्षेत्रों में घरेलू गतिविधियों के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संरचना में वैश्विक गतिविधियों के अनुरूप वित्तीय बाजारों के अपविनियमन तथा उदारीकरण में तारतम्य बैठाया जाए।

(iii) पूंजी खाता : सोचा-समझा उदारीकरण

पिछले डेढ़ दशक के अनुभवों से लाभ उठाते हुए पूंजी खाते के उदारीकरण के प्रति भारत के दृष्टिकोण को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में रखा जा सकता है: पहला, पूंजी खाते के उदारीकरण को एक प्रक्रिया माना जाता है, कोई घटना नहीं। दूसरे, यह माना गया है कि चालू और पूंजी खाता में संबंध हो सकते हैं, अतः ऐसी प्रक्रियाएं स्थापित होनी चाहिए जिनसे चालू खाता लेनदेनों के रूप में पूंजी के बहिर्गमन को बचाया जा सके। तीसरे, पूंजी खाते के उदारीकरण को अन्य सुधारों के अनुसार रखा जाता है। पूंजी खाते के उदारीकरण की सीमा और समय को अन्य सहवर्ती गतिविधियों जैसे बैंकिंग को सुदृढ़ बनाना, राजकोषीय समेकन, बाजार का विकास तथा समन्वय, व्यापार उदारीकराण तथा बदलते देशी और विदेशी आर्थिक परिवेशों के साथ-साथ यथोचित रूप से क्रमबद्ध किया जाता है। चौथे, उदारीकरण की गति एक क्रमिकता, विशेषकर मौद्रिक और वित्तीय क्षेत्रों में होने वाली घरेलू गतिविधियों तथा विकसित होती हुई अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संरचना के अनुरूप होती है। जैसे- जैसे उदारीकरण बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे प्रशाासनिक उपाय कम होते जाते हैं और मूल्य आधारित उपाय बढ़ते जाते हैं, परंतु इस मिश्रण में परिवर्तन करने और नियंत्रणों को पुनः लागू करने की आजादी स्पष्टतः उपलब्ध है। पांचवें, पूंजी प्रवाहों के स्रोतों और प्रकारों में पद-क्रमता (हाईरार्की) स्थापित है। इसमें प्राथमिकता पूंजी के बहिर्गमों की अपेक्षा आगमों को उदार करने की रहती है, परंतु पूंजी के आगमों से जुड़े सभी बहिर्गमों

को पूर्णतः मुक्त रखा गया है। छठे, व्यक्तियों, कंपनियों तथा पारस्परिक निधियों की ओर से बहिर्गमों पर उल्लेखनीय रूप से उदारीकरण को बाह्य क्षेत्र के काफी सुदृढ़ीकरण के अनुकूल बनाया जा रहा है। अंतिम, मध्यावधिक रूप में लगभग पूर्ण पूंजी खाते के उदारीकरण की ओर बढ़ते हुए, वर्तमान में, विशेषकर, वित्तीय मध्यस्थक संस्थाओं पर विवेक-सम्मत नियंत्रणों को लागू करने तथा प्रसंगवश, पूंजी खाते के और अधिक सक्रिय रूप से प्रबंधन की जरूरत को भलीभांति मान लिया गया है।

भारत की योजना है कि आगे जाकर भी बहुत सावधानीपूर्वक बनायी गयी यह क्रमिक रूप से आगे बढ़ने की पद्धति जारी रहेगी क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में होने वाले सुधारों से तालमेल बनाये रखने में समर्थ बनाती है। तथापि लगभग पूर्ण उदारीकरण की गति घरेलू कारकों, विशेषकर, वास्तविक क्षेत्र, राजकोषीय समेकन तथा वित्तीय संरचना के विकास करने में हुए सुधारों की आगे की प्रगति और कुछ सहवर्ती स्थितियों की प्राप्तियों, जिनका उल्लेख इस विषय पर गठित अंतिम तारापोर समिति में किया गया है, के अलावा, अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों पर निर्भर करेगी।

6. निष्कर्षात्मक टिप्पणियां

मित्रों, मैं आशा करता हूं कि मैंने आपको वृद्धि और स्थिरता की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन का विहगावलोकन प्रस्तुत कर दिया है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, इसमें चुनौतियां भी हैं, विशेषकर, भौतिक बुनियादी संरचना, कृषि और अनिवार्य सार्वजनिक सेवाओं जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य की सुपुर्दगी के क्षेत्र में। मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि इसमें आशावाद विद्यमान होने के आधार भी है क्योंकि भारत में हम, कुछ अंतवर्ती और अनुपम शक्तियों के साथ स्वतः तेज गति से बढ़ने वाले पथ के विकासात्मक चरण में हैं। भारत में वृद्धि की गति व्यापक रूप से फैली तथा भली प्रकार से संवितरित उद्यमी प्रतिभा से प्रेरित है जिसमें नवोन्मेष करने की चाह है। यह व्यवसाय-प्रेरित वृद्धि है - जिसमें वास्तविक अर्थव्यवस्था और वित्तीय क्षेत्र दोनों में बाजारों का भारी नेटवर्क विद्यमान है, जो उभरती हुई अर्थव्यवस्था के पूर्ण परिपक्वता की स्थिति में रूपांतरित कर रहे हैं। यह वृद्धि मुख्य रूप से घरेलू मांग से प्रेरित है - जिसमें खपत और निवेश दोनों शामिल हैं। हमारी राजनैतिक प्रणाली उल्लेखनीय रूप से स्थिर है। भारत विविध अनेकताओं का देश है, परंतु इसमें विभिन्न धर्मों, भाषाओं के बीच अतुलनीय समरसतापूर्ण सह-अस्तित्व और एक सामासिक संस्कृति विद्यमान है। अतः व्यक्तिगत रूप से मैं यह विश्वास करता हूँ कि भारत में सकारात्मक रूप से स्वस्थ, नयी और अंतरराष्ट्रीय प्रणालियों में सहजता और दक्षतापूर्वक फिट होने वाले ऐसे विविध मूल्यों को समाहित करने की दृष्टि से अंतवर्ती शक्तियां विद्यमान हैं।